IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, S.Iss 01, 2023

बौद्ध धर्म–दर्शन में अर्हत् एवं बोधिसत्व

प्रियंका साहनी,
शोधार्थी
विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, रॉची।

बौद्ध दर्शन की अनुपम देन अर्हत् और बोधिसत्व का विचार है। हीनयान सम्प्रदाय के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति ही अर्हतत्व की प्राप्ति है। परन्तु महायान सम्प्रदाय निर्वाण के बिना भी अर्हतत्व की प्राप्ति संभव मानता है। अर्हत्तत्व–निर्वाण का आदर्श वैयक्तिक है, जबकि महायान के अनुसार निर्वाण का आदर्श सार्वभौमिक है। वैयक्तिक आदर्श का तात्पर्य है कि केवल अपनी तृष्णाओं को दूर करने का प्रयास एवं दुःख से मुक्ति। ज्योंहि एक व्यक्ति अपने दुःख से मुक्त होता है, त्योंहि वह निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। निर्वाण के पश्चात् उसका व्यक्तित्व नहीं रहता है।

सार्वभौमिक आदर्श का तात्पर्य है कि न केवल अपनी मुक्ति वरन् अन्य लोगों की मुक्ति का भी प्रयास करना चाहिए। अपने साथ–साथ दूसरे व्यक्ति की तृष्णाओं को दूर कर उन्हें दुःख से छुटकारा दिलाना चाहिए, जैसाकि स्वयं बुद्ध ने किया था। हीनयान सम्प्रदाय के अनुसार निर्वाण एक ही प्रकार का है, चाहे उन्हें निर्वाण कहें या परिनिर्वाण। परन्तु महायान सम्प्रदाय निर्वाण के दोनों प्रकारों को स्वीकारता है।– निर्वाण, परिनिर्वाण। स्वयं बुद्ध ने इस संबंध में कहा कहा है– यह बताना कठिन है। किन्तु बुद्ध के कार्यो को देखकर ऐसा लगता है कि महायान सम्प्रदाय को उनसे समर्थन ही मिलता है। मिलिन्दप्रष्न में भी निर्वाण के दोनों भेद देखे जाते हैं, जैसाकि गत अध्याय से स्पष्ट है। निर्वाण के दोनों आदर्षो–वैयक्तिक और सार्वभौमिक भी वर्तमान है। इसलिए अर्हत् और बोधिसत्व दोनों पदों का उल्लेख भी मिलता है। अर्हत के संबंध में नागसेन के विचार को निम्नलिखित उद्धरणों से जाना जा सकता है– ''अर्हत् शरीर में होनेवाली वेदनाओं को अनुभव करता है और मन में होनेवाली वेदनाओं को अनुभव नहीं करता .... अर्हत् को न कोई चाह रहती है और न कोई बेचाह। .... इन (दस) बातों पर अर्हत् का कोई अधिकार या वष नहीं चलता .... सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, पाखाना, पेषाब, थकावट, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु। .... गृहस्थ अर्हत् होते या तो प्रव्रजित हो जता है या परिनिर्वाण पा लेता है। दूसरे, अर्हत् आवें या नहीं, वह उसी दिन परिनिर्वाण पा लेगा।''[1]

इन उद्धरण से अर्हत् की विशेषताओं का पता चलता है। अर्हत् वह है जो सभी इच्छाओं के परे हो जाता है, क्योकि वह अपने मन को नियंत्रण में रखता है। चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। किन्तु दस प्रकार की प्राकृतिक क्रियाओं को नियंत्रण में रखना किसी भी जीव के लिए संभव नहीं।अतएव, अर्हत् भी इनको अपने वश में नहीं रख पाता, बल्कि स्वयं इन क्रियाओं के अधीन होता है और यह स्वाभाविक है। नागसेन वृक्ष के धड़ की

उपमा द्वारा इस बात की पुष्टि करता है। जैसे एक बहुत बड़ा हरा–भरा वृक्ष हो। उसका धड़ बहुत मोटा हो। उसकी शाखाएं भी लम्बी–लम्बी फैली हो। कभी जो की हवा चले और वे शाखाएं आगे–पीछे हिलने लगे। तो कभी उसका मोटा धड़ भी हिलने लगेगा? नहीं। अर्हत् के चित्त को ठीक उसी धड़ के ऐसा समझें।[2] वास्तव में अर्हत् का चित्त अभ्यास द्वारा स्थिर और दृढ़ हो जाता है, उसकी चंचलता नष्ट हो जाती है। फिर भी उसकी शारीरिक वेदना बनी रहती है और वह प्राकृतिक क्रियाओं के कारण।

यदि अर्हत् अपने चित्त पर नियंत्रण पा लेता है, लेकिन शारीरिक वेदना पर नहीं, तो इसका तात्पर्य है कि निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् भी वह कर्म करता है। भले ही वह कर्म स्वाभाविक हो अथवा मीमांसा दर्शन के शब्दों में नित्य कर्म हो। कर्म का सम्पादन व्यक्तित्व के अभाव में संभव नहीं है। अतएव यदि अर्हतत्व की प्राप्ति का अर्थ निर्वाण की प्राप्ति लिया जाय, तो निर्वाण का अर्थ व्यक्तित्व शून्यता नहीं हो सकती। इस स्थल पर हीनयान सम्प्रदाय के निर्वाण की स्थिति विरोधाभासी हो जाती है और नागसेन भी विरोध में पड़ जाता है। मूल रूप में नागसेन थेरवादी है। हीनयान सम्प्रदाय थेरवाद का ही पोषक है। अतएव सच्चे थेरवादी की भांति नागसेन को अर्हतत्व का अर्थ परिनिर्वाण से ही लेना चाहिए। परिनिर्वाण व्यक्तित्व शून्यता है। हम उक्त उद्धरण में पाते हैं कि नासगेन ने अर्हतत्व का तात्पर्य परिनिर्वाण से भी लिया है। इतना ही नहीं वरन् उसका अर्थ प्रव्रज्या से भी लिया गया है। किन्तु प्रव्रज्या के लिए किसी उपाध्याय की अनिवार्यता है।[3] इसलिए अर्हतत्व का प्राथमिक अर्थ परिनिर्वाण ही होना चाहिए, क्योंकि उपाध्याय के बिना भी परिनिर्वाण मिलता है।[4] स्पष्ट है कि उक्त उद्धरणों में नागसेन से अर्हत् के दो स्वरूप का उल्लेख किया है। एक स्वरूप वह है जिसमें उसकी काया बनी रहती है। इस स्वरूप को 'सकाय अर्हत्' कहा जा सकता है। दूसरा स्वरूप वह है जिसमें अर्हत् के शरीर का लोप हो जाता है। इसे ''अकाय (विदेह) अर्हत्'' कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, नागसेन भारतीय दर्षन के जीवनमुक्त एवं विदेह मुक्त के समान ही अर्हत् की कल्पना करता है। सकाय अर्हत् जीवनमुक्त को पर्याय है, तो अकाय अर्हत् की कल्पना करता है। सकाय अर्हत् जीवनमुक्त को पर्याय है तो अकाय अर्हत् विदेहमुक्त का पर्यायहै। यह विचार स्थविरवाद या थेरवाद के अनुकूल ही है, क्योकि स्थविरवादियों की मान्यता है कि पारमिताओं को पूर्णकर बुद्ध संसार में जन्म लेते हैं, उपदेश करते हैं और महापरिनिर्वाण को प्राप्त करते है। वे सदा जीवित रहनेवाले नहीं है। महापरिनिर्वाणोपरान्त उन्हें कोई नहीं देख सकता है कि कहां गए।[5]

अर्हत्त्व की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित गुणों का होना अनिवार्य बतलाया गया है– सतर्कता, संयम, नियमितता, निर्देषिता, इन्द्रिय निग्रह, मानसिक तत्परता, आत्मसुरक्षा, दृढ़ संकल्प, एकान्तवास, शुद्ध जीविका, मैत्री–भाव, ध्यानमग्नता, स्थितप्रज्ञता, आज्ञाकारिता, तम्रता समानता, लग्नषीलता, वनवास–भाव, व्यापकता, जिजीविषा, समभाव, सरलता, शांति, ईमानदारी,

क्षमा, दया, अपरनिन्दकता, सर्वप्रियता, संतोष, अक्रोध, स्वच्छंदता, अचलता, सर्वोच्चता, जागरूकता, अल्पहारिता, अयाचकता, उत्साह, धैर्य, आत्मनिरीक्षण, धर्मपरायणता, गतिशीलता, सत्संगता, अपलायनवादिता, लक्ष्य–वेधता, विवेकशीलता, स्वाभिमान, मिलनसारिता, श्रद्धा, माननशीलता, अथकन, ध्यानस्थता, आशावादिता, त्याग, व्यर्थविवादरहित, वीर्य, नियमबद्धता, अभ्यास और वैराग्य।[6] ट्रेंकनर ने अर्हत्त्व की प्राप्ति के लिए बीस विशेष गुणों का उल्लेख किया है जो नागसेन द्वारा बतलाया गया है। दूसरे शब्दों में, ट्रेंकनर की मान्यता के अनुसार नागसेन अर्हत् पद हेतु बीस गुणों का उल्लेख करता है। वे गुण हैं– आत्मसंयम का सबसे अच्छा रूप, आत्म–नियंत्रण का संवर, हैर्य, विनम्रता, एकान्तचारिता, एकान्तमुदिता, एकान्तसाधना, संकोच और गलत कार्य करने के भय, वीर्य उद्यम, उपदेषों को समझना, धर्मग्रंथें का मंत्रोच्चारण, पूछताछ, शील एवं नैतिकता के अन्य नियमों में प्रसन्नता, अनासक्ति तथा उपदेशों की पूर्ति।[7]

अर्हत् पद की प्राप्ति केवल इन गुणों द्वारा ही नहीं होती, वरन् उसके लिए कम–से–कम तीन चरणों को पार करना होता है। वास्तव में, निर्वाण एवं परिनिवार्ण प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को एकाएक अर्हत्त्व का तात्पर्य है धारा में मिलना (स्त्रोतधारा, आपन्न= मिलन, पड़ा हुआ)। इसलिए स्त्रोतापन्न का अर्थ निर्वाण के मार्ग पर आरूढ़ होना या उस मार्ग में दृढ़ होकर मिल जाना। किन्तु निर्वाण की धारा या मार्ग में मिलने के लिए तीन संयोजकों अर्थात् तीन बंधनों का उन्मूलन आवश्यक है। वे संयोजक हैं– सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा तथा शीलव्रत परामर्ष। आत्मवाद का प्रभाव सत्काय दृष्टि है। विचिकित्सा का अर्थ है संदेह। शीलव्रत परामर्ष व्रतोपवास आदि के फलों में आसक्ति को कहते हैं। जब इन संयोजकों का विनाष होता है, तो मुमुक्षु (निर्वाण प्राप्ति का इच्छुक) चार प्रकार की सम्बोधित को अपनाता है। प्रथम सम्बोधि बुद्ध में अत्यन्त श्रद्धा रखना है। द्वितीय सम्बोधि बुद्धवचन– इसी षरीर के रहते फल देनेवाला है (सांदृष्टिक सद्य फलप्रद)[8]– में श्रद्धा रखना है। तृतीय सम्बोधित बुद्ध के संघ की न्यायपरायणता एवं उस संघ में सुमार्गारूढ़ होने में विश्वास रखना है। चतुर्थ सम्बोधि अखण्ड, अनिन्दित, समाधिगामी कमनीयशीलों से युक्त होना है। इन सम्बोधियों को प्राप्त करने के पश्चात् मुमुक्षु का कम–से–कम एक बार पुनः जन्म होता है। इसलिए मुमुक्षु यहीं नहीं रूकता, वरन् तीसरे चरण को भी अपनाता है ताकि पुनः जन्म न लें। तीसरा चरण अनागामी कहलाता है। अनागामी का अर्थ ही है न आनेवाला (अन्+गामी)। इस चरण में मुमुक्षु शेष विकार (जो स्त्रोतापन्न तथा सकृदागामी की स्थितियों में विनष्ट होने के पश्चात् नगण्य मात्र में बचता है) से भी रहित हो जाता है। तत्पश्चात् वह अर्हत्त्व की प्राप्ति करता है। प्रथम दो चरणों में विनष्ट होने के पश्चात् जो विकास बचते हैं, उन्हें रूपराग, अरूपराग, मान औद्धत्य और अविद्या की संज्ञा दी गई है।[9] तीसरे चरण में इन विकारों की समाप्ति के पष्चात् मुमुक्षु समस्त क्लेषों से मुक्त हो जाता है और उसे अर्हत् की प्राप्ति होती है।

अर्हत्त्व की प्राप्ति करनेवाला अर्हत् कहलाता है, और उपर्युक्त तीन चरणों को पार करने के पश्चात् ही वह इस योग्य होता है। यही कारण है कि अर्हत् का भावी अस्तित्व नहीं होता, अर्थात् वह पुनर्जन्म के बंधन से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। ट्रेंकनर और रायस डेविड्स की मान्यता है कि नागसेन ने अर्हत् में तीन गुणों का वर्तमान होना आवश्यक बतलाया है, जो उसकी निजी विशेषता या पहचान हैं।[10] वे गुण है–

1. अर्हत् का मन स्नेह और कोमल प्यार से भरा होता है।
2. उसके मन में अशुभ का विनाश हो जाता है, अर्थात् उसका मन अशुभरहित होता है।
3. अभिमान की समाप्ति होती है तथा पुनः उसका प्रवेश नहीं होता।
4. आत्मप्रियता का अन्त होता है।
5. स्थायी और सबल, स्थापित और अविचलित आत्म विष्वास।
6. उसका हृदय समाधि से प्राप्त आनन्द से आपूरित रहता है, वह शांति और आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है।
7. वह जीवन की सत्यता (धार्मिकता) का मधुर श्वास लेता है।
8. वह मनुष्य और देवताओं के निकट एवं प्रिय होता है।
9. सर्वशक्तिमान् होना।
10. देवताओं और मनुष्य उसे सम्मान प्रदान करते है।
11. ज्ञानी एवं विद्वान उसके प्रषंसक होते है।
12. प्रेम द्वारा वह लौकिक एवं अलौकिक दुनिया में अकलंकित है।
13. वह छोटी–से–छोटी, महत्वहीन घटनाओं में भी खतरा देखता है।
14. वह निर्वाण के फलरूपी धन में समृद्ध होता है।
15. वह भोजन, वस्त्र, आवास और ध्यान (जो भिक्षुओं के लिए अनिवार्य है) से परिपूर्ण होता है।
16. वह बिना घर का होता है। (उसका आवास निर्जनवन है)
17. वह पांच भावी स्थितियों का पूर्ण विनाश करता है। फलतः पुनर्जन्म की संभावना का बिल्कुल ही अंत कर देता है। वे पांच स्थितियाँ है– पाप, पशु–जगत, भूत–संसार, मनुष्य और देव।
18. वह पांच बाधाओं (काम–भाव, द्वेष, आलस्य, घमण्ड और संदेह)को बिल्कुल ही नष्ट कर देता है।
19. उसका चरित्र अद्भुत होता है।
20. वह भिक्षुओं के लिए निर्देषित चार नियमों का अतिक्रमण कभी नहीं करता।
21. वह सभी चिन्ताओं के परे होता है।
22. उसका मन पूरी तरह पूर्ण निर्वाण पर लगा होता है।

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved, UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 12, S,Iss 01, 2023

23. वह सत्य को देखता है।
24. वह समस्त भयों के परे होता है।
25. काम–भाव, द्वेष, अधर्म, संदेह, दर्प, पुनर्जन्म की इच्छा, अज्ञान– इन सात कुप्रवृत्तियों की ओर प्रवृत्ति का पूर्णतः उन्मूलन।
26. वह महान अशुभों (काम–भाव, भावी जीवन, भ्रम और अज्ञान) का अंत करता है।
27. वह शांति के बंधन में आता है।
28. वह वैराग्य के आनन्द में बंध जाता है।
29. वह उन सभी सद्गुणों से युक्त होता है जो एक भिक्षु के लिए अनिवार्य है।

इन गुणों से युक्त होने के बावजूद अर्हत् को दोषरहित नहीं माना जा सकता है। अर्हत् में दोष उत्पन्न होने के निम्नलिखित कारण बतलाये गये है– बुरा काम करने से उत्पन्न दोष तथा भिक्षु नियम के विरूद्ध आचरण करने से उत्पन्न दोष। दस प्रकार के बुरे काम का उल्लेख किया गया है– जीव–हिंसा, चोरी करना, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली खाना, कड़ा बोलना, गप्पे मारना। लोभ करना, द्वेष करना और मिथ्या दृष्टि। जो अर्हत् इन कामों को करता है, वह दोषयुक्त है। परन्तु इन बुरे कामों को करने वाला कभी भी अर्हत् नहीं कहला सकता। इसलिए, अर्हत् कभी भी इन बुरे कामों को नहीं करता है। वस्तुतः अर्हत्त्व की प्राप्ति के लिए इनका विनाष अपेक्षित है। इसलिए यदि अर्हत् में दोष उत्पन्न होता है तो वह भिक्षु नियम के विरूद्ध आचरण करने से ही। भिक्षु–नियम के विरूद्ध आचरण का मतलब है कि जो भिक्षु के लिए बुरा समझा जहाता हो परन्तु साधारण लोगों के लिए नहीं। भिक्षु–नियम वह है जिसे भिक्षुओं को आजीवन पालन करना है। महाराज! गृहस्थों के लिए दोपहर के बाद भोजन करने में कोई दोष नहीं, किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। फूल–पत्तों को तोड़ने में गृहस्थों के लिए कोई दोष नहीं, किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। जब क्रीड़ा करने में गृहस्थों के लिए कोई दोष नहीं किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। महाराज! इस तरह और भी कितनी बातें हैं जिनको करने में गृहस्थों के लिए कोई दोष नहीं है किन्तु भिक्षु नहीं कर सकते हैं।[11]

जब कोई अर्हत् भिक्षु–नियम के विरूद्ध आचरण करता है तो वह कुटी बनवाने में, सच्चरित्रता में, विकाल को उचित काल समक्ष लेने में, प्रवारित को अप्रवारित समक्ष लेने में जो अतिरिक्त नहीं उसे अतिरिक्त समक्ष लेने में दोष करता है।[12]

अर्हत् के गुण–दोष को देखने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि निर्वाण का अर्थ कदापि जीवन शून्यता नहीं है, जैसाकि हीनयान सम्प्रदाय मानता है और न ही अर्हत् का तात्पर्य परिनिर्वाण या निर्वाण ही है। वस्तुतः यह निर्वाण तक पहुँचने की एक स्थिति या सोपान है। अतएव नागसेन अर्हत् के साथ–साथ बोधिसत्व को भी स्वीकार लेता है ताकि वह अपने अर्हत्–विचार में वर्तमान भूल का सुधार कर सके।

बोधिसत्व वह है जो अपने जन्म लेने से पूर्व ही आठ बातों को जानलेता है– मनुष्य लोक में जन्म लेने का कौन उचित काल होगा, किस द्वीप (देश) में जन्म लेना होगा, किस जगह जन्म लेना होगा किस कुल में जन्म लेना होगा, कौन माता होगी, कितने समय तक गर्भ में रहना होगा, किस महीने में जन्म होगा और कब घर छोड़कर निकल जाना होगा।[13] इस संदर्भ में नागसेन ने जिन उपमाओं की सहायता से अपने कथन की पुष्टि और मिलिन्द की द्विविद्या को दूर करने का प्रयास किया है, वे लचर और कमजोर हैं। कहा गया है कि बनिये को पहले से ही अपना सौदा देख–भाल कर लेना होगा है, हाथी को पैर बढ़ाने के पहले सूंड से आगे की जमीन को देख लेना होगा है, गाड़ीवान को अनजान नदी पार करने के पहले ही उसे देख लेना होता है, कर्णधार को किनारे पहुँचने के पहले ही तीर को देख–भाल लेना होता है, वैद्य को चिकित्सा आरम्भ करने के पहले ही रोगी का आयु देख लेनी होती है, बांस के पुल को पार करने के पहले ही देख लेना होता है कि वह काफी मजबूत है या नहीं, भिक्षु को भोजन करने के पहले देख लेना होता है कि सूरज कहां तक चढ़ा है, और बोधिसत्व को पहले ही देख लेना होता है कि ब्राह्मण का कुल या क्षत्रिय का।[14] स्पष्ट है कि नागसेन अपने उक्त कथन की पुष्टि में कोई तर्क नहीं देता है, वरन् सदोष वस्तुओं और वैद्यों की उपमा लेता है। बोधिसत्व तो वह है, जो अह्तत्व की प्राप्ति के पश्चात् होता है। अर्हत् के दोष बोधिसत्व की स्थिति में समाप्त हो जाता है, इसलिए निर्दोष बोधिसत्व के लिए सदोष उपमा अनुपयुक्त है।

बोधिसत्व की निर्दोशिता इस बात से भी प्रमाणित होती है कि उसमें दस गुण निहित होते है। नागसेन के अनुसार वे गुण–निर्लोभता, आनासक्ति, त्याग, वैराग्य, संकल्पवान, सूक्ष्मता, महानता, दुरनुबोधता, दुर्लभता और बुद्ध–धर्म की असदृश्ता।[15] इन्हीं गुणों के कारण बोधिसत्व अपनी पत्नी और संतान को दान करता है। सभी बोधिसत्वों को यह दान या त्याग करना पड़ता है अन्यथा वे इस पद की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं। सभी बोधिसत्वों को ज्ञान–प्राप्ति के लिए, सन्यासी या वैरागी जीवन ही बोधिसत्व का जीवन है।

यद्यपि बोधिसत्व अनेक हैं, लेकिन केवल बुद्ध ने ही दुःख की चर्चा की है। बुद्ध आदि (प्रथम) बोधिसत्व हैं, जिन्हें दुःख की चर्चा की चर्चा करनी पड़ी थी। कारण बतलाते हुए कहा गया है कि नाचनेवाली स्त्रियों की उचटा देनेवाली अवस्था को देखकर उनका मन फिर गया था। मन फिर जाने से उन्हें वैराग्य हो गया। उनके चित्त को वैराग्य से भरा देखकर किसी मारकायिक देवपुत्र ने सोचा– ठीक यही समय है कि मैं उनके वैराग्य को तोड़ दूं।[16] मार की सोच में बुद्ध को अनेक प्रलोभन दिए। उन प्रलोभनों के कारण वह अपने वैराग्य में और दृढ़ होते चले गये। उनका मन तो पहले से ही संसार की अनियत्ता और दुःख से उचटा हुआ था। वह तो दस बन्धनों से मुक्त हो चुके थे। वे दस बंधन हैं– माता–पिता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव, मित्र, धन, लाभ–सत्कार, प्रभुता और पांच काम–गुण बंधन। बुद्ध अपमानित और निन्दित जिन्दगी नहीं जीना चाहते थे। इसलिए उन्होंने दुःख चर्चा की। नागसेन की मान्यता के

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved,

अनुसार बोधिसत्व गौतम ने विधवा स्त्री, कमजोर आदमी, मित्र–बन्धु–बान्धव विहिन व्यक्ति, पेटू आदमी, छोटे कुल का आदमी, बुरे लोगों के साथ रहनेवाला, गरीब आदमीख और निन्दित जिन्दगी को अनुभव कर सोना कि देवताओं और मनुष्यों में कभ्झी भी निकम्मा और नालायक समझा जाकर निन्दित न हो। इसलिए उन्होने कर्मशीलता और कर्मपरायणता को अपनाया।[17] इसके अतिरिक्त, दुःखचर्चा का एक और अन्य कारण बतलाया गया है। भूख और प्यास से बोधिसत्व गौतम का शरीर दबा होना। इनके चलते चित्त को कमजोर करने वाली अन्य बाते हैं– क्रोध, डाह, डींग, घमण्ड, ईष्या, लोलुपता, झुठी दिखावट, शठता, जिद्धीपन, झगलानूपन, अपने को सबसे बड़ा समझना, मद, प्रमाद, स्त्यान, तन्द्रा, आलस्य, बुरी मित्रता, रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श और असंतोष। इन सभी बातों के परे हाने के बावजूद भी बुद्ध को भूख और प्यास से पीड़ित होने के कारण दुःखचर्चा करनी पड़ी।[18]

मिलिन्दप्रश्न में बोधिसत्व की संख्या असीम मानी गयी है। परन्तु प्रत्येक बोधिसत्व में समान गुण होने के बावजूद एक बोधिसत्व दूसरे बोधिसत्व मात्र से चार स्थानों में भिन्न होता है– कुल में, स्थान और समय में, आयु में और ऊँचाई में। प्रत्येक बोधिसत्व के समान गुण है–रूप, शील, समादि, प्रज्ञा, विमुक्ति ज्ञान के साक्षात्कार, चार वैशारद, दस बुद्ध–बल, छः असाधारण ज्ञान, चौदह बुद्ध–ज्ञान, अट्ठारह बुद्ध धर्म इत्यादि।[19] जगदीश कश्यप ने चार वैशारद्य तथा दस बुद्ध–बल का उल्लेख पाद टिप्पणी में किया है, लेकिन असाधारण ज्ञान, बुद्ध–ज्ञान, बुद्ध–धर्म का नामोल्लेख नहीं किया।[20] कश्यम के अनुसार चार वैशारद्य का तात्पर्य है कि जो विश्वास करते हों कि कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव या भार उनकी ओर अंगुली उठाकर यह नहीं कह सकता है–

1.आपके बताये बुद्ध में पाये जाने वाले गुणों को आपने नहीं पा लिया है, अथवा

2. जिन क्लेशों को आप अर्हत् में क्षीण होना बताते हैं, वे आप में क्षीण नहीं हुए हैं, अथवा

3. ऊपर की अवस्था में जिन बातों को आप अन्तराय बताते हैं वे उनके अभ्यास करने वालों के लिए वैसे नहीं हैं, अथवा

4. लोगों के सामने आप जिस उद्धेश्य को रखकर धर्मोपदेश करते हैं वह उसके अनुसार चलने वालों को दुःख से मुक्त नहीं कर सकता।[21]

दस बुद्ध–बल है– स्थनास्थान– ज्ञान बल, कर्मविपाक–ज्ञान–बल, नानाधिमुक्ति– ज्ञान बल, नानाधातु– ज्ञान बल, इन्द्रिय परापर–ज्ञान बल, सर्वत्र– गामिनी प्रतिपद, संक्लेषव्यवदान, व्युत्थान, पूर्वनिवासानुस्मृति, च्युति–उत्पति, आसत्रवक्षय।[22]

बोधिसत्व की भिन्नता के चार स्थान (संदर्भ) बतलाये गये हैं, उनका अर्थ यह है कि परिवार की भिन्नता जिनमें अलग–अलग बोधिसत्व जन्म लेते हैं और प्रत्येक बोधिसत्व को पता

है कि उसे किस परिवार में जन्म लेना है। प्रत्येक बोधिसत्व को पता होता है िकवह कब पूर्णता को प्राप्त करेगा। किन्तु प्रत्येक बोधिसत्व की पूर्णता प्राप्त करने की अवधि अलग–अलग होती है। पूर्णता का अर्थ है कि पारमिताओं को पाना। हर बोधिसत्व के जीवन की अवधि भी अलग–अलग होती है, लेकिन हरेक जानता है कि उसकी अपनी अवधि क्या है। इस प्रकार हर बोधिसत्व अपनी–अपनी ऊँचाई जानता है। परन्तु प्रत्येक की ऊँचाई अलग–अलग होती है।

पारमिताओं के संबंध में महायान सम्प्रदाय का उपदेष है कि पूर्णत्व को प्राप्त करना ही पारमिता है। पारम् इता...... यही अर्थ पारमिता का। पार का तात्पर्य है इस संसार के परे होना अर्थात् दु–खों के भवसागर को पार करना। इस भवसागर को पार करने के लिए छः साधन है। इन्हीं छः साधनों को पारमिताएं कही गयी है। वास्तव में पारमिता का आशय सदाचार तत्व से है।[23] इसलिए, महायान सम्प्रदाय ने जिन छः+ साधनों की गणना पारमिता के रूप में की है, वे सदाचार तत्त्व ही है। वे साधन हैं– दान, शांति, वीर्य, ध्यान (समाधि), प्रज्ञा एवं शील।[24] किन्तु बसु ने दस पारमिताओं का उल्लेख किया है।[25] और यदि नागसेन के विचार महायान सम्प्रदाय की पूर्वछाया है तो दस पारमिताओं को छः नहीं बनाया जा सकता। हां, उनमें वृद्धि की जा सकती है। अतएव नागसेन एवं महायान बौद्ध भी दस पारमिताओं को ही स्वीकारते हैं। वे पारमिताएं है– दान, शील, निष्काम, प्रज्ञा, वीर्य, शांति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा।

दान पारमिताओं में प्रथम है। प्रत्येक बोधिसत्व को बिना किसी भेद–भाव और बिना किसी स्वार्थ के दान करना चाहिए। मिलिन्दप्रश्न में राजा वेस्सन्तर की दानशीलता की दानशीलता का उदाहरण लेकर इस तथ्य को पुष्ट किया गया है।[26] उक्त उद्धरण की दानशीलता ही नहीं, वरन् उनके शील का भी संकेत है। बोधिसत्व के लिए शील का होना भी अपेक्षित है। शील का अर्थ है, शरीर एवं मन में स्व–नियंत्रण और आत्म–संयम। शुभ कर्मो को करने में आनेवाली बाधाओं को निराकृत करना शील की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसलिए इसे बौद्ध साधना का आधार कहा गया है।[27] मिलिन्दप्रश्न में पांच प्रकार के शीलों का उल्लेख है– शरणशील, पंचशील, अष्टांगशील, दशांगशील, प्रत्युपदेश आनेवाले प्रतिमोक्ष संवर–शील।[28] बौद्ध धर्म में तीन शरणशील है– बुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।[29]

भारतीय दर्शन में कर्म के दो रूप बतलाये गये हैं– सकाम कर्म और निष्काम कर्म। कर्म का पहला रूप वह है जिसमें कोई कामना (इच्छा या फल) निहित रहती है। किन्तु दूसरा रूप कामनारहित होता । कामना रहित कर्म अर्थात् निष्काम कर्म करने की प्रेरणा ही भारतीय दर्शन का उद्धेश्य है।[30]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मिलिन्दप्रष्न में जहां एक ओर अर्हत् की उवधारणा निर्वाण के रूप में स्वीकृत की गयी है, वहीं दूसरी ओर बोधिसत्व की अवधारणा को पूर्णता के रूप में स्वीकारा गया है। बोधिसत्व की अवधारणा में हिन्दू–दर्शन की छाप भी दिखलायी पड़ती है। दीक्षित ने ठीक ही कहा है कि वस्तुतःदस पारमिताएं ब्राह्मण विचारधारा में वर्णित सद्गुणों,

सदाचारों, त्यागपूर्वक कार्यो आदि का परिष्कृत रूप है, जो इन पारमिताओं में विभिन्न नामों से वर्णित किया गया है।[31] मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों का उल्लेख है– धैर्य, क्षमा, दान, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, घी, विद्या, सत्य और अक्रोध। इन लक्षणों को सामान्य धर्म कहा गया है। इनके अतिरिक्त दान, शील, संकल्प, सादगी, कठोरता, मितव्ययिता, ईमानदारी, दया, करूणा आदि को भी स्वीकार किया गया है। किन्तु इनमें से कुछ को ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए कुछ को गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम अथवा सन्यास आश्रम के लिए स्वीकृति दी गई है। इसलिए इन्हें विशेष धर्म की संज्ञा दी जाती है। मनुस्मृति (हिन्दू धर्म) में स्वीकृत सदाचार को सामान्य और विशेष धर्मो में वर्गीकृत किया गया हो लेकिन प्रकारान्तर से अथवा प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में ये मिलिन्दिप्रश्न में उल्लेखित बोधिसत्व के लिए बतायी गयी उपरोक्त पारमिताओं के समकक्ष है।

संदर्भ सूची

1. जगदीश कश्यम, मिलिन्द प्रश्न, जेतवन महाविहार, पाली संस्थान, श्रावस्ती, 1972, पृ0 2.2.12, 4, 6, 58, 4, 7, 63
2. वहीं, पृ0–4.6 5.8
3. वही – 4.7.63
4. जगदीश दीक्षित, ब्राम्हण तथा बौद्ध विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय विद्या प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1979, पृ0 325
5. पूर्वोद्धत, मिलिन्द प्रश्न– 6, 1, 1–10, 6, 2, 11–20, 6, 3, 21–30, 4.31, 6.6,
6. वही, 51–60, 6, 7, 61–67, 6.5.41–50
7. रविन्द्र नाथ बसु, ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ द मिलिन्दपंह, फिर्मा के0 एल0 एम0 प्राईवेट लिमिटेड, कलकत्ता, 1978, पृ0,73
8. जगदीश दीक्षित, पूर्वोद्धत्, पृ0 318
9. रविन्द्र नाथ बसु, पूर्वोद्धत, पृ0 77
10. जगदीश कश्यम, मिलिन्द प्रश्न– 4.7.64
11. वही,4, 4, 35
12. वही, 4, 8, 72
13. वही, 4, 8, 73
14. भिक्षु धर्मरक्षित, संयुक्त निकाय, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1938
15. भिक्षु जगदीश कश्यप, मिलिन्दप्रश्न (हि.अ.) 349–50
16. जगदीश दीक्षित, पूर्वोद्धत, पृ0 336
17. बसु, पूर्वोद्धत, पाद–टिप्पणी, पृ0 67
18. मिलिन्दप्रश्न– 4, 8, 72

19. वही, 2.1.8
20. वही 5क
21. वही– 2. 2. 11
22. रविन्द्र नाथ बसु, पूर्वोद्धत् पृ0 70
23. मिलिन्दप्रश्न 2. 1.8
24. एडवडमूलर, भगवद् गीता, पी0टी0एस0, लंदन, 1897 भाग– 2, 56
25. मिलिन्दप्रश्न 4, 8, 72, 4.1.6
26. वही, 4, 4, 37
27. वही 2, 2, 13
28. टी0 डब्ल्यू0 रायस डेविड्स, द क्वेष्चन्स ऑफ मिलिन्द, किंग, न्यूर्याक, 1969
29. बी0 ए0 स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड, 1924
30. जगदीश दीक्षित, पूर्वोद्धत, पृ0 344
31. एडवडमूलर, मनुस्मृति, पी0टी0एस0, लंदन, 1897 के विभिन्न अध्यायों में वर्णाश्रम धर्म का निर्देश है।